P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III * Issue-XII*August-2016

1859 ई. का बस्तर का कोई विद्रोह

डिश्वर नाथ खुटे
सहायक प्राध्यापक,
इतिहास अध्ययन शाला,
पं. रविशंकर शुक्ल वि.वि.,
रायपुर, छ.ग.

सारांश

बस्तर एक आदिवासी बाहुल्य अंचल रहा है। यहां के आदिवासियों में धार्मिक विश्वास और आस्था का आधार है प्रकृति।यहां की प्राकृतिक परिस्थितियां वनों के सर्वथा अनुकूल है। बस्तर का लगभग 57 प्रतिशत भाग वनों से आच्छादित है। वन बस्तर के सौंदर्य है, जीवन है, संस्कृति है वस्तुतः वन बस्तर के प्राणतंत्र है। यहां के वनवासियों का समग्र जीवन वनों की गोद में ही तो गुजरता है। जन्म से लेकर मरण तक वृक्षों की हर सांस इनके साथ रहती है। बस्तर के आदिवासी अपने देवी–देवता का स्थान वृक्षों में ही पाते है। इनके प्रति असीम श्रद्धा वनवासियों के मन में रहती हैं तथा वृक्षों को वे नहीं काटतें है।

मुख्य शब्द : यजुर्वेद, अथर्ववेद, पद्मपुराण, मत्स्यपुराण, वराहपुराण, स्कन्दपुराण, दत्तक निषेध,कोई, मांझी, बंजारा, सिरोंचा।

प्रस्तावना

बस्तर छत्तीसगढ़ राज्य का एक आदिवासी बाहुल्य अंचल रहा है। यहां के लोग अपने देवी – देवता का स्थान वृक्षों में ही पाते है। इनके प्रति असीम श्रद्धा वनवासियों के मन में रहती है तथा वृक्षों को वे नहीं काटते है। बस्तर के वनों में साल वृक्षों की अधिकता के कारण ''बस्तर को साल वनों की द्वीप'' कहा जाता है। बस्तर को 1854 ई. में लार्ड डलहौजी ने नागपुर के अधीन होने के कारण अपने आंग्ल नियंत्रण में ले लिया तथा उनकी दृष्टि बस्तर के वनों पर पड़ी। वहां के साल वृक्ष की लकड़ी का उपयोग भारत भर में रेल लाईन बिछाने के उद्देश्य से वनों की कटाई कराने का आदेश दिया गया, जिसका बस्तर के आदिवासी समूह ''कोई'' ने विरोध किया। 1859 ई. में यह क्षेत्र ''कोई आंदोलन'' से प्रभावित रहा। ठेकेदारों व अंग्रेजी सरकार के लोगों को बस्तर के कोई आदिवासियों ने मार भगाया तथा बस्तर के साल वृक्ष को काटने नहीं दिये, कई लोग इस विद्रोह में मारे गए। खराब स्थिति को देखकर सिरोंचा के डिप्टी कमिश्नर सी.ग्लासफर्ड को तुंरत ही दक्षिण बस्तर आकर विद्रोहियों से समझौता करना पड़ा तथा अपना आदेश वापस लेना पड़ा। इसमें कोई आदिवासियों की पूरी तरह जीत हुई।

उद्देश्य

1. बस्तर के आदिवासी सरल व शांत प्रवृत्ति के होते है लेकिन उनके जीवन व प्रकृति के खिलाफ शासकीय नीतियां होने पर समयानुसार वे विरोध भी कियें है जिनका अध्ययन इस शोध पत्र में किया गया है।
2. कोई आदिवासी प्रकृति की रक्षा के प्रति बहुत ही सजग व जागरूक है जो कि प्रेरणाप्रद है।
3. अपने जीवन की चिंता न करते हुए वे आदिवासी अपने फरसा, भाले, कुल्हाड़ी, तीर कमान आदि से ही अंग्रेजी सेना व ठेकेदारों के बंदूको से लोहा लिए है। अपने अधिकारों की लड़ाई औपनिवेशिक शासक अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ी है जिनका अध्ययन इसमें किया गया है।
4. इस आदिवासी विद्रोह को भारत के किसी विद्रोह में शामिल नहीं किया गया है जबकि यह विद्रोह भारत में वन सुरक्षा संबंधी पहला विद्रोह है जिनका अध्ययन आवश्यक है।
5. कोई विद्रोह के कारण एवं परिणाम को जान सकेंगे ।

इससे विद्रोह से पता चलता है कि कोई आदिवासी जीवन, प्रकृति, क्षेत्र, व देश के प्रति बहुत ही जागरूक रहे है जिनका अध्ययन आवश्यक है जिन्हे इस शोध पत्र में प्रस्तुत किया जा रहा है ।

पर्यावरण हमारे चारों ओर स्थित वह घेरा या वातावरण है जिसका हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उपभोग करतें है। इसके अंतर्गत प्रकृति जन्य सभी तत्व आकाश, जल, अग्नि, ऋतु, पर्वत, नदियां, वृक्ष, वनस्पति, जीव–जन्तु, ग्रह, नक्षत्र, दिशाएं एक तरह से अखिल ब्रम्हाण्ड ही सम्मिलित हो जाता हैं। पर्यावरण चेतना से हमारा अभिप्राय प्रकृति के इन तत्वों के महत्व को समझना, इनका सही

उपयोग करना, इनकी सुरक्षा व संवर्धन के प्रयास करना है। इस तरह प्रकृति और मानव एक–दूसरे के पूरक है। प्राचीन काल में प्रकृति की पूजा का विधान था और वेदमंत्रों द्वारा देवताओं को प्राकृतिक शक्तियों के रूप मे प्रस्तुत करते हुए व्याख्या की गई है। यजुर्वेद में ''वृक्षाणां पतये नमः'' कहकर वृक्षों की रक्षा करने वालों के लिये सत्कार प्रकट किया गया है। अथर्ववेद में अनेक सूक्त वनस्पतियों को समर्पित है और इन अरण्यों के बल पर ही यह संस्कृति पल्लवित और पुष्पित होती है। वृक्षों में देवत्व की भावना का विकसित रूप पद्मपुराण में मिलता है। पद्मपुराण के अनुसार कोलाहल नामक युद्ध में दानवों से पराजित देवताओं ने प्राणरक्षा के लिये वृक्षों की शरण ली थी। तभी से वृक्षों में देवताओं के निवास के कारण वृक्षों का संरक्षण तथा पूजन, पुण्य माना गया है।[1]

वृक्ष पर्यावरण संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। मत्स्य पुराण में वृक्षोंपासना तथा वृक्ष महोत्सव पर विचार प्रकट किया गया है।[2] वराह पुराण में बताया गया है कि वृक्षारोपण करना किसी अन्य दान से कम नही है, अपितु यह भूमिदान और गोदान के समान है।[3] पुराणाचार्यों ने पादपरोपण के महत्व को दुखनिवृत्ति और सुख समृद्धि से जोडते हुए जनता को वृक्ष लगाने के लिये प्रेरित किया है कि जो व्यक्ति एक पीपल, एक नीम या बरगद, दो नींबू या पांच आम के वृक्ष लगाता है, वह कभी भी कष्ट को प्राप्त नहीं करता।[4]

वृक्ष मानव समाज को अग्निहोत्र के ईंधन देते है, पथिकों को छाया और विश्राम, पक्षियों को निवास तथा प्राणियों को औषधियां प्रदान करते है।[5] स्कन्दपुराण के अनुसार घर में तुलसी पादपरोपण से समस्त दरिद्रता विनिष्ट हो जाती है।[6] इस प्रकार पेड पौधों और वनस्पतियों का महत्व प्राचीन काल से ही स्वीकार्य रहा है।

भारत की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा आदिवासियों का है। छत्तीसगढ़ के बस्तर की जनजातियों का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वतंत्रता के पूर्व बस्तर छत्तीसगढ़ प्रभाग (मध्यप्रांत) की एक प्रमुख रियासत थी। यह रियासत छत्तीसगढ़ के सभी 14 रियासतों में सबसे बडी थी, जिसकी राजधानी जगदलपुर थी।[7] यह रियासत $17^0$46 से $20^0$14 उत्तरी अक्षांश और $80^0$45 से $82^0$1′ पूर्वी देशांश के मध्य 13062 वर्ग मील क्षेत्र में विद्यमान था।[8] रियासत की लंबाई उत्तर से दक्षिण 180 मील तथा चौडाई पूर्व से पश्चिम तक 125 मील थी।[9]

बस्तर एक आदिवासी बाहुल्य अंचल रहा है। यहां के आदिवासियों में धार्मिक विश्वास और आस्था का आधार है प्रकृति। यहां की प्राकृतिक परिस्थितियां वनों के सर्वथा अनुकूल है। बस्तर का लगभग 57 प्रतिशत भाग वनों से आच्छादित है। वन बस्तर के सौंदर्य है, जीवन है, संस्कृति है वस्तुतः वन बस्तर के प्राणतंत्र है। यहां के वनवासियों का समग्र जीवन वनों की गोद में ही तो गुजरता है। जन्म से लेकर मरण तक वृक्षों की हर सांस इनके साथ रहती है। बस्तर के आदिवासी अपने देवी–देवता का स्थान वृक्षों में ही पाते है। इनके प्रति असीम श्रद्धा वनवासियों के मन में रहती हैं तथा वृक्षो को वे नहीं काटतें है।[10]

बस्तर के वनों मे मुख्यतः साल, सागौन, बीजा, साजा, धावडा, महुआ, तेंदु, हर्रा, आंवला, इमली, खैर तथा बांस आदि के वृक्ष पायें जाते है। यहां के वनों में साल वृक्षों की अधिकता के कारण ''बस्तर को साल वनों का द्वीप'' कहा जाता है। साल की लकड़ी का उपयोग इमारती लकड़ी, रेल के डिब्बे, स्लीपर, ट्रक ट्राली तथा समुद्री जहाज आदि बनाने में किया जाता है।[11] बस्तर की सागौन लकड़ी की मांग संपूर्ण भारत में सर्वाधिक होती है। इस लकड़ी से निर्मित सामानों में एक विशेष प्रकार का सौंदर्य आ जाता है।[12]

बस्तर के आदिवासी ऊपर से शांत एवं सरल प्रकृति के है, किंतु वे अत्यंत संवेदनशील प्रजाति रही है। जहां उनकी अस्मिता को ठेस लगी और उनका शोषण व अत्याचार चरम सीमा पर पहुची, तो उन्होने विद्रोह भी किये है। बस्तर के राजघराने का संबंध ब्रिटिश शासन से 1854 ई. में हुआ, जब नागपुर राज्य को लार्ड डलहौजी ने दत्तक निषेध नीति के अंतर्गत हड़प लिया। नागपुर के साथ – साथ छत्तीसगढ़ व बस्तर भी तत्काल प्रभाव से आंग्ल– नियंत्रण में आ गया।[13] अब ईस्ट इंडिया कंपनी शासन काल में बस्तर के वनों पर अंग्रजों की गिद्ध दृष्टि पड़ी। वनों की कटाई एवं वन्य जीवों का शिकार का उपक्रम शुरू हुआ। बस्तर गोरों का शिकार गाह बन गया। भारत भर में रेल लाइनें बिछाई जा रही थी तथा बस्तर में जिस गुणवत्ता के साल के जंगल थें, वे अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं थें। अंग्रेजो ने अपने तात्कालिक और दूरगामी हितों की पूर्ति के लिये बस्तर में ठेंकेदारी प्रथा को बढ़ावा दिया। बस्तर की अकूत और उत्कृष्ट वन संपदा अंग्रेजो की नजरों में कीमती हरा सोना था। उन्हें बस्तर के वनों की कीमत बूझते देर नहीं लगी। वे मद्रास के रास्ते से यूरोपीय बाजार में भेजने का सपना देखने लगें। कंपनी सरकार ने औपनिवेशिक हितों की दृष्टि से बस्तर में राज–काज को नये सांचे में ढालना चाहा।[14]

सन् 1859 ई. में बस्तर में दूसरे राज्यों से ठेकेदारों को बुलाकर वनों की कटाई हेतु आरा मशीनें लगवा दी गई। ''अंग्रेजों ने बस्तर रियासत के राजा भैरमदेव और दीवान दलगंजन सिंह की उपेक्षा करते हुए वनों की कटाई का ठेका हैदाराबाद के ठेकेदार हरिदास–भगवानदास को दिया। हरिदास के सिर्फ नाम में हरि था, मानवता उसमें नाम मात्र का भी नहीं था। वह बहुत क्रूर और जालिम व्यक्ति था। वह काटी गयी लकड़ी का मूल्य भी नहीं चुकाता था। उन्हें न तो यहां के आदिवासियों के सरोकारो से मतलब था और न ही उसे लूट के दामों में यहां से सस्तें मजदूर, अपने राज्य मे उपलब्ध हो सकते थें। उनकी निगाह में कोई आदिवासी इंसान नहीं थें, उसके लिये कटाई के कार्य में लगे मजदूर निजि सम्पत्ति थे''।[15]

ब्रिटिश सरकार उसके खिलाफ की गई शिकायतों को अनसूनी करती थी। लोग उसकी गलत नीतियों से पीड़ित थें, तथा उनका हर प्रकार से शोषण होता रहा।[16]

यह कितने आश्चर्य की बात थी कि जिनका जीवन जंगल है, वे नहीं जानते थे कि यहां के वनों की कटाई किस लिये हो रही है जिनके घर जंगल में है, वे नहीं जानते कि उन्हें उजड़ जाने के आदेश किस लिये

दिये गये। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि जंगल बस्तर का और लाभार्थी हैदराबाद का निजाम ? यह सब बस्तरवासियों को रास नहीं आया, कुछ ही महीनों में बस्तर अशांत हो गया। स्थान –स्थान पर आदिवासी लामबंद होने लगे। आंदोलन की आंच दक्षिण बस्तर में अपेक्षाकृत ज्यादा महसूस की गई। इस आंदोलन में मुख्य संगठनकर्ता नेताओं में भोपालपट्टनम के जमींदार राम भोई, भेज्जी के जमींदार जुम्मा राजू तथा जुग्गा राजू, फुतकेल के जमींदार नागुल दोरा तथा कुन्या दोरा आदि थें।[17]

दक्षिण बस्तर के आदिवासियों की चिंता स्वाभाविक थी जो पर्यावरण के प्रति उनकी समझ से निकली थी। वे अब सोचने लगे कि जंगल नही रहेगा तो घर किधर होगा, वनोपज व शिकार कहां से मिलेगी और जीवन–यापन कैसे चलेगा। अपने जंगल खो देने की अहसास ने उन्हें एकजुट कर दिया।

दक्षिण बस्तर के भोपालपट्टनम, भेज्जी, कोतापल्ली व फुतकेल के जमींदारियों में रहने वाले आदिवासियों को ''कोई'' कहा जाता था जिन्हे आज हम दोर्ला तथा दण्डामी माडिया कहते है।[18] अतः उनके द्वारा किये गयें विद्रोह ''कोई विद्रोह'' के नाम से जाना गया। जंगल में लकडी की कटाई का काम जैसे ही गति पकड़ी दक्षिण बस्तर के आदिवासियों ने सन् 1859 ई. में मांझी प्रमुखों से मिलकर यह सामूहिक निर्णय लिये कि ''अब बस्तर से साल का वृक्ष कोई भी व्यक्ति नहीं काट सकेगा।'' अपने इस निर्णय की सूचना उन्होनें बस्तर के राजा, अंग्रेज अधिकारियों तथा हैदराबाद के ठेकेदारों को दे दी गई। धीरे–धीरे यह विद्रोह की भावना संपूर्ण दक्षिण बस्तर में फैल गया। ब्रिटिश सरकार ने इसे अपनी प्रभुसत्ता को चुनौती मानी और उसने लकड़ी कटाई करने वाले मजदूरों के साथ बंदूकधारी सिपाही भेजे। कोई आदिवासी भी अब हथियार का जवाब हथियार से देने के लिये तैयार थें। उनका नारा था– ''एक साल वृक्ष के पीछे एक व्यक्ति का सिर''।[19]

अगली सुबह खबर फैली कि आरा मशीन चलाने वालों के साथ हथियार बंद सिपाही लगायें गयें है। तो स्वतः स्फूर्त आक्रोश ने जन्म लिया। बंदूक के साये में आरा मशीनों की घरघराहट जैसे ही आंरभ हुई, कोई आदिवासी अनियंत्रित हो गए। हजारो सिर कुर्बानी देने के लिये तत्पर हो गए। वे सभी तरफ से तीर–कमान, भाले–फरसे और मशाल लेकर जंगल की ओर दौड़े। नंगी छातियों ने अंग्रेजी सेना व ठेकेदारों को खुली चुनौती दे दी कि चाहे जितने कारतूस फूंक दो, अब रहेंगे तो हम और हमारे जंगल या फिर कुर्बानी ही सही। ठेकेदारों के तरफ से रायफलें गरजी, तो कोई आदिवासियों ने उनका सामना तीर – कमान व भाले फरसे से वीरता के साथ प्रत्युत्तर दिया। युद्ध शस्त्रों से ही नहीं, हौसलों से भी लड़े जाते है यह कोई आदिवासियों ने दिखला दी । आरा चलाने वाले कारीगरों के सिरों को कोईयों ने काट डाले, लकडी के टालों को आग के हवाले कर दिये गयें। एकदम से दहशत व्याप्त हो गयी। ठेकेदार स्तब्ध रह गया तथा उन्हें भूमिगत हो जाना पड़ा।[20]

लेकिन चिंतलनार के पास बंजारे लोग अभी भी हैदराबाद के निजाम के ठेकेदारों तक साल–सागौन के लकडी पहुचा रहें थें। आदिवासियों के नाजायज शोषण में बंजारो की कई सौ वर्षो से भूमिका रही है। नमक, गुड़, और कुछ रंग बिरंगे सौंदर्य उत्पादों के एवज में कीमती वनोंपज धड़ल्ले से बस्तर रियासत के बाहर ले जाया जाता था। ऐसी स्थिति में दक्षिण बस्तर के आदिवासियों का सारा आक्रोश बंजारा लोगों के खिलाफ हो गया था। दोर्ला तथा दंडामी माडिया दलों ने बंजारा लोगो के कारवां को जगह – जगह लूटा। बापीराजू के नेतत्व में उन्होंने एक कारवां से 2500/– रूपये लूटे। अनेक जगहों पर विद्रोहियों ने बंजारों के अनाज की कोठियों को लूटा तथा बैलगाड़ियों को छिना। इस विद्रोह में अनेक ठेकेदार, कारीगर तथा बंजारे मारे गए।[21]

इस समय स्थिति इतनी खराब हो गई कि सिंरोचा के डिप्टी कमिश्नर सी. ग्लासफर्ड को 1859 ई. में ही तुरन्त सेना लेकर दक्षिण बस्तर आना पड़ा। हालात का जायजा लेने के बाद उसने प्रमुख विद्रोही नेताओं से समझौता किया। उसने अपनी हार मानकर, बस्तर में लकड़ी ठेकेदारी की प्रथा को समाप्त किया तथा बस्तर से हैदराबाद के ठेकेदारों व उनके लोगों तथा सिपाहियों को हटा लिया। उसने आदिवासियों तथा अंग्रेज सिपाहियों के बीच निर्मित होने वाली युद्ध की स्थिति को टाल दिया। अपने पूर्व के आदेश को निरस्त किया तथा दक्षिण बस्तर में पुनः शांति बहाली हुई।[22]

निष्कर्ष

इस विद्रोह से पता चलता है कि अंग्रेज अधिकारी सी. ग्लासफर्ड की चिंता बढ़ गई थी। बस्तर के कोई आदिवासी समूह उन्हें ऐसी चुनौतियां उत्पन्न कर रहे थें जो अन्यत्र नहीं मिली। कोई आदिवासियों की राजनीतिक समझ बेमिसाल थी। कागज पर शासक चाहे जो हो लेकिन जगदलपुर के प्रति ही राज्य की हर आदिम प्रजाति की प्रतिबद्धता रहीं। कोई आदिवासी भी सामंती व्यवस्था के अंतर्गत शासित थें और वे राजा की प्रभुसत्ता स्वीकार करते हुए अपने प्रमुख अर्थात् मांझियों के अधीन थे।

अंग्रेज अधिकारियों को यह समझ आ गया था कि प्रतिरोध आगे बढ़ने से बेहतर है कि जंगल कटाई का कार्य बस्तर रियासत के माध्यम से ही करवाया जायें। अतः बस्तर से ब्रिटिश सेना लौटा दी गई तथा निजाम के आदमियों को दिये गये सभी ठेके निरस्त कर दिये गयें। अंग्रेजों के लिये यह कदम भले ही रणनीति का हिस्सा रहा हो, ''कोई आंदोलन'' ने अपनी सफलता का इतिहास लिख दिया। इस विद्रोह के सभी नेताओं ने एकता स्थापित कर बहादूरी से लड़ाई लड़ी और अपने लक्ष्य को प्राप्त किया अर्थात् जीत हासिल कियें।

बस्तर के वनों को समय से पूर्व कटने से बचाने का यह ''कोई विद्रोह'' बस्तर का ही नहीं वरन् छत्तीसगढ़ तथा भारत का अनोखा विद्रोह था। इस विद्रोह के पीछे आदिवासियों की आट्विक मानसिकता का परिचय मिलता है। साल वृक्ष की रक्षा हेतु सभ्य समाज से दूर कहे जाने वाले आदिवासियों ने जो संघर्ष किया है, वह उनके पर्यावरण जागृति को दर्शाता है। इस तरह की जागृति और चौकन्नापन्न आज की पीढी में दिखाई नहीं देता है। यह विद्रोह आज के शिक्षित समाज के लिये एक प्रेरणा है। इस विद्रोह में आदिवासियों की वैचारिक दृढ़ता के

दर्शन होते है। सही मायनों यह ''भारत का पहला पर्यावरण सुरक्षा आंदोलन'' था। अपने शाल वनों की रक्षा हेतु कोई आदिवासियों ने जो आहुतियां दी, वे बस्तर के इतिहास में अमर रहेगी। 1859 ई. का कोई विद्रोह बस्तर का पहला विद्रोह था, जिसमें अंग्रेजों ने अपनी हार मानी तथा उन्हें विद्रोहियों के साथ समझौता करना पड़ा। इसमें बस्तर के कोई आदिवासियों ने अपने लक्ष्य और उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल रहें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मांडलिक, बी.एन. (संपादक), (1893–94), पद्मपुराण, 4 भाग, आनंदाश्रम सीरिज, पूना, पृ. 13, उत्तरखंड
2. रत्न, पंचायत तर्क, (1908), मत्स्य पुराण, बंगवासी प्रेस कलकत्ता, प्रथम संस्करण, पृ. 59.1
3. शास्त्री, ऋषि केश (संपादक), (1893), वराहपुराण, चौखंबा, अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण पृ. 8.28
4. शास्त्री, एच.पी. (संपादक), (1867), वृहद्धर्मपुराण, चौखंबा, अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण पृ. 8.28–30
5. पूर्वोक्त, पृ. 8.50
6. आाचार्य, श्रीराम शर्मा, (संपादक), (1976), स्कन्द पुराण, चमनलाल गौतम संस्कृति संस्थान बरेली (उ.प्र.), द्वितीय संस्करण, पृ. 249.1
7. बेहार, राम कुमार, (2010), छत्तीसगढ़ का इतिहास, छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर,पृ. 172
8. डीब्रेट, ई.ए. ,(1909), द सेंट्रल प्राव्हिसेंस गजेटियर, द छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेट्स, पृ. 25
9. जगदलपुरी, लाला, (2007), बस्तर इतिहास एवं संस्कृति,मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी,भोपाल,पृ. 01
10. सिंह, सत्य प्रकाश, (2009), बस्तर सामान्य ज्ञान, शिक्षादूत ग्रंथागार, रायपुर, पृ. 46
11. गौड़, शरत चंद्र एवं कविता, (2008), बस्तर एक खोज, विश्वभारती प्रकाशन नागपुर पृ. 45
12. विजय, प्रमोद, (2010), बस्तर – सामान्य परिचय एवं पर्यटन बस्तर, नवकार प्रकाशन कांकेर पृ.16
13. बेहार, राम कुमार, (संपादक), (1995), बस्तर एक अध्ययन,मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी,भोपाल पृ. 76
14. सक्सेना, सुधीर, (2007), भुमकाल– बस्तर का भूचाल, छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर पृ. 34
15. वीरा, राजबाबू, (2015), बीजापुर एक खोज, जिला प्रशासन बीजापुर पृ. 44–45
16. वर्मा, भगवान सिंह, (2003),छत्तीसगढ़ का इतिहास, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ. 242
17. शुक्ल, हीरालाल, (2009), बस्तर का मुक्ति संग्राम, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ. 126
18. शुक्ल, हीरालाल, (2007), छत्तीसगढ़ का जनजातीय इतिहास,मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी,भोपाल,पृ. 159
19. वर्ल्यानी जे. आर. एवं साहसी, व्ही.डी., (1998), बस्तर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, दिव्या प्रकाशन कांकेर, पृ. 166
20. वीरा, राजबाबू प्रखर, पूर्वोक्त पृ. 46–47
21. शुक्ल, हीरालाल, (2007), आधुनिक बस्तर–परतंत्रता तथा प्रतिकार, बी. आर. पब्लिशिंग, नई दिल्ली पृ. 69
22. सी. ग्लासफर्ड रिपोर्ट,(1862),(जगदलपुर कलेक्ट्रेट रिकार्ड रूम से प्राप्त)